नदी नहीं थकती

(काव्य संकलन)

गौरीशंकर मधुकर

सुलोचन प्रकाशन
पाबू जी का थान
सैण्ट्रल जेल के सामने,
बीकानेर-334005

✆ : 0151-527183

सुलोचन प्रकाशन
पावू जी का थान, सैण्ट्रल जेल के सामने, बीकानेर-334005

मुख्य वितरक : कलासन प्रकाशन
माल गोदाम रोड, बीकानेर
✆ 0151-526890

प्रथम संस्करण : 1996

मूल्य : सजिल्द - 75/-
पेपर बैक - 50/-

मुद्रक : कल्याणी प्रिंटर्स, बीकानेर (राज.)

आवरण-पारदर्शी : देवीचन्द गहलोत

समर्पण



जन्म : भाद्रपद कृष्णा 10 संवत् 1980
अवसान : ज्येष्ठ कृष्णा 13 संवत् 2047

यह प्रथम
काव्य संकलन
समर्पित है
ममतामयी माताजी
स्व. (श्रीमती) कृष्णा देवी स्वर्णकार
को सादर

प्राक्कथन

चैतन्य की अविरल यात्रा

श्री गौरीशंकर 'मधुकर' का प्रथम काव्य संग्रह 'नदी नहीं थकती' मेरे सामने है। यह इनकी तीस वर्षों की काव्य साधना का प्रतिफल है।

किसी भी कवि की प्रथम कृति पर प्राक्कथन लिखना एक जोखिम भरा काम है,इसलिए क्योंकि प्रोत्साहन के नाम पर यदि अधिक प्रशंसा हो जाए तो कवि आत्म मुग्ध हो सकता है और उसकी चेतना की गति स्खलित हो सकती है। उधर यदि तीखी और करारी आलोचना हो जाए तो वह हतोत्साहित हो सकता है और इस क्रम में शायद उसकी काव्यचेतना अवरुद्ध भी हो सकती है। दोनों ही काम कसाले के हैं लेकिन मेरे सामने 'मधुकर' के काव्य संकलन को लेकर ऐसी कोई समस्या नहीं थी। इसके दो कारण है–एक तो इन कविताओं के पीछे उनकी तीस वर्षों की काव्य-साधना है और दूसरे सैकड़ों कविताओं में से 28 चुनी हुई रचनाओं को ही इसमें सम्मिलित किया गया है।

इतनी लम्बी काव्य-साधना के आधार पर कवि से मेरी कुछ अपेक्षाएँ थीं,जैसे. इनमे अनुभव का कच्चापन नहीं होगा, भाषा में ऋजुता और प्रांजलता होगी; शब्दों का कलात्मक प्रयोग होगा, नए भाव वोध के अनुकूल मुहावरा होगा; बिम्ब-विधानो की जटिलता नहीं होगी; बौद्धिक प्रवंचनाएँ नहीं होंगी यानी कुल मिलाकर जीवन का सही और सच्चा आस्वाद होगा। संकलन को आद्योपान्त पढ़ने के वाद मैं कह सकता हूँ कि प्रथम पाठक के रूप में कवि ने मुझे निराश नहीं किया है।

सबसे अधिक प्रभावित करने वाली कविताओ में संकलन की पहली कविता 'सम्बंध बोध' और अंतिम कविता 'अहसास' को रेखांकित किया जा सकता है। एक में चैतन्य की अविरल यात्रा है; अस्तित्व-बोध है; जिजीविषा है और परास्त न होने का भाव है तो दूसरी मे नैसर्गिक चैतन्य के निरकुश अधिग्रहण के कारण अस्तित्वहीनता का बोध है। यह अस्तित्व-बोध और

अस्तित्व हीनता का संकट किसी न किसी प्रकार से संकलन की सभी कविताओं में है। सामाजिक फलक पर जो नकारात्मक शक्तियाँ हमारी चेतना को समाप्त करने पर तुली हैं –नदी को थकाना चाहती हैं–अस्तित्व मिटाना चाहती हैं; उनके लिए कवि ने व्यंग्य विधा का सहारा लिया है। इंसान की भीतरी ताकत को उजागर करने वाली और समरसता लाने वाली मन.स्थितियाँ कहीं ग़ज़लों और गीतों में उतरी हैं तो कहीं आधुनिक भावबोध की पुख्ता और सशक्त कविताओं मे अभिव्यक्त हुई हैं। वहाँ वे हठपूर्वक अपने अस्तित्व को बनाये रखना चाहती हैं। यह अस्तित्व बोध और अस्तित्वहीनता का संकट हमारे सोच को एक दिशा देता है और वह दिशा चेतना की अबाध अकाट्य और अखूट शक्ति की दिशा है–ठीक उस नदी की तरह, जो न थकती है, न रुकती है और जो सागर में समाकर भी अपने अस्तित्व को नहीं खोती और जो धरती पर सूख करके भी अंतःसलिला बनी रहती है।

एक और बात है जिसने मेरे ध्यान को बरबस खींचा है। आज जब कविता का विस्फोटक सृजन (?) हो रहा है और प्रकाशनों की भीड़भाड़ है तो ऐसे में भीड़ मे रहते हुए भी अपनी पृथक पहचान बनाये रखना कितना कठिन काम होगा–इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। पहचान कोई यों ही नहीं बना करती–उसके लिए कुछ अनूठापन चाहिए, कुछ ऐसा लगना चाहिए कि कविता एक कलावस्तु है; उसमें रचनात्मक अनुशीलन है; कुछ मार्मिकता है और वह आत्मिक साक्षात्कार से उपजे मानस क्षणों का सृजन है। ऐसे रचनात्मक क्षण सीमित हुआ करते हैं। 'मधुकर' का काव्य संग्रह 'नदी नहीं थकती' इस बात के लिए आश्वस्त करता है कि कवि ने इन रचनात्मक क्षणों को पकड़ने की ईमानदार चेष्टा की है।

बिम्ब विधान और उपमाओ की ताजगी इस संकलन की अनूठी विशेषता है। ऐसा कहीं नहीं लगता कि घिसीपिटी पुरानी और पारंपरिक उपमाओं की जूठन परोस दी गई हो। एक ताजगी सर्वत्र तैरती रहती है और दृश्यबंध खुलते से चले जाते है जैसेः चाँद की गोद मे बेसुध पड़ी प्यार की अमराइयों में घुली-घुली रात; दूधिया मलाई की मोटी परत सा चिकना-चिकना प्यार; धरती के आँचल पर बूँद-बूँद झरता गगन का स्वस्तिक गान; हिरणों जैसे कुलांचे भरती दृष्टि; किरणों से बंधे हुए मोर के पाँव; दूरियां लाँघने वाले साइबेरिया के सारस सा प्यार; चंदन वन में रात-रात भर रहकर भी गंध हीन रह जाने वाली किंशुक कली; ढीठ और अड़ियल बालकों सी फुहारें; निर्वसन, नि.संग और बेसुध पड़ी रात का मुँह चूमने वाला यायावर चाँद; आत्ममुग्धा सी रस भीगी ठगी-ठगी रात; झिलमिल मोती की थाली में रखे दीपक सा मन; सूखे सावन की मृत्यु पर तर्पण देने एक हल्की सी बरसात और

न जाने कितनी ऐसी उपमाएँ हैं जो प्रकृति के उपकरणो का जीवन के साथ एक रचनात्मक संवाद स्थापित करती हैं।

कवि लुके-छिपे प्यार का नहीं; एक पारदर्शी सात्विक प्यार का हामी है—यह प्यार देहयष्टि से लेकर सम्पूर्ण मानव समाज के स्नेहिल बंधनों तक फैला हुआ हैं। गीतों और ग़ज़लों को प्रायः कमनीय माना जाता है; रेशमी फिसलन वाला माना जाता है पर 'नदी नहीं थकती' के कवि ने एक साथ दो प्रयोग किये हैं। एक तरफ ये गीत स्वप्निल संसार में विचरण करते से लगते है तो दूसरी ओर ये जीवन की जटिल प्रक्रियाओं को झेलते हुए इंसानी वेदना और चेतना को वाणी भी देते हैं। संक्षेप में कहा जाए तो इन गीतों और ग़ज़लों में प्रेम की कमनीय भावनाओं के साथ-साथ सामाजिक सरोकारो की अनूठी जुगलबंदी है।

संकलन में कम से कम अठारह ऐसी रचनाएँ हैं जिन्हे हम मुक्त छंद की कह सकते हैं। इन रचनाओं में आत्मालाप नहीं है। किसी न किसी प्रकार का सामाजिक सरोकार है; एक तरह का द्वन्द्व है जो हमारे विचार संवेदन को व्यापक बनाता है; समय के साथ एक सार्थक संवाद है। आज का परिवेश हमें प्रायः व्यंग्य और विद्रूप की तरफ धकेलता है। हमें लगातार लगता है कि हमारी जीवन धर्मिता, हमारी संवेदना जैसे छीज रही हो, हमारी चेतना को जैसे घुन लग रहा हो और समाज की काया को जैसे अवसाद और जड़ता की व्याधियाँ लील रही हों। एक तरह के अजीव फूहड़पन को, एक घिनौनी नग्नता को और

तो फिर कब करेगा? यदि यहाँ पर भी वह जीवन के साथ साझेदारी करने मे चूक गया तो फिर कविता करने का अर्थ ही क्या है? 'मधुकर' की ऐसी अनेक रचनाएँ हैं जिनमें सामाजिक सरोकार हैं—जैसे बढ़ती नशेबाजी, गधे की अभिलाषा, किस्सा कुर्सी का, दहेज, मेरे भगवान बालकों में हैं, समाजवाद, नामों का मायाजाल आदि। सब में सटीक व्यंग्य है। यहाँ तक कि कविता के धर्म से च्युत कवियों को भी बख्शा नहीं गया है। संकलन में तीन-चार रचनाएँ ऐसी हैं जो कविता के विद्रूप पर सीधी चोट करती हैं। कवि ने अपनी कविताओं को कलाधर्मी बनाने के साथ-साथ काल धर्मी बनाने की चेष्टा की है—यही इनकी सार्थकता है।

ऐसा नहीं है कि कविताओं में कमजोरियाँ नही हैं। जहाँ कहीं कवि मे उपदेश वृत्ति आई है या कविताओं में अनचाहा और अनावश्यक विस्तार हुआ है या यौवन के भावुक, कमजोर और लिजलिजे क्षणों को ज्यों का त्यों उतार दिया गया है, वहाँ-वहाँ कविताएँ कमजोर हुई हैं। संतोष की बात यह है कि ऐसे स्थल अपेक्षाकृत काफी कम हैं।

विज्ञान या कि यांत्रिकी का लोकहितकारी पक्ष अपनी जगह पर है पर यह भी सत्य है कि उसने मनुष्य को ज्यादा से ज्यादा एकाकी बनाने, सुविधाभोगी होकर स्वार्थप्रिय बन जाने और द्वीपनुमां चिन्तन रखने का आदी बना दिया है। यदि उसने हमारी सबसे बड़ी सम्पत्ति छीन कर हमें कंगाल बनाया है तो वह है प्रेम की सम्पत्ति, भाईचारे की सम्पत्ति और सामाजिक समरसता की सम्पत्ति। कवि ने इस खाई को पाटने का प्रयास अपनी जिन कविताओं में किया है– वे हैं: भाईचारा; याचना, सुधियों का पहरा, शाश्वत संदेश और मन को बांट लिया। संकलन में दार्शनिक चिन्तन, अस्तित्व बोध और मातृभूमि प्रेम की सशक्त रचनाएँ भी है जैसे सम्बन्ध बोध, अहसास, असली मालिक और मेरी धरती आदि। प्रकृति के साथ कवि की अंतरंगता तो प्रायः प्रत्येक कविता में परिलक्षित होती है।

'मधुकर' को मैं वर्षों से जानता हूँ–सरल, सहज और निश्छल व्यक्ति के रूप में। संकलन में उनकी भाषा भी इसी सरलता और सहजता को लिये हुए है। उन्होंने भाषा की सरलता पर बल दिया है, उसकी सजावट पर नहीं; कथ्य की कसावट को अपनाया है; बनावटीपन को नहीं। ऐसी भाषा काम में ली है जो कविता के आन्तरिक दबाव को झेलकर शब्द की सर्जनात्मक शक्ति को सामने ला सकती है। जाहिर है कि कविता केवल शब्द तक सीमित नहीं रहती, उसमें ध्वनि, लय और अर्थ संकेतो का भी अपना महत्व होता है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि भाषा के स्तर पर कवि काफी सावधान है और यही कारण है कि संकलन में सम्प्रेषणीयता की कोई समस्या नहीं है।

इन कविताओं से कुछ उद्धरण देने को मन करता है पर फिर एक समस्या आ जाती है। ढेर सारे ऐसे स्थल हैं जो उद्धरण बन सकते है। किसका चयन करें और किसे छोड़ें? और फिर पाठकों पर भी तो मुझे पूरा भरोसा है। जो स्थल उनको छूएगा, जो उनके मर्म को कुरेदेगा उनके लिए वही कविता होगी। वैसे भी कविता तभी पूर्णता प्राप्त करती है जब वह पाठक तक पहुँचती है और उसे अपनी संवेदना का हिस्सेदार बनाती है। यह सब ठीक है, फिर भी नमूने के तौर पर एक उद्धरण दिये बिना नहीं रह सकता।

कल मैं फिर हरा हूँगा
फूटेंगे नए कल्ले मुझसे
निकलेंगी नई शाखाएँ, डालियाँ
खिलेंगे फूल बहुरंगी
फकत अनुरोध इतना है
जरा सी आर्द्रता दे दो नदी !

महक दे दो री हवा!
मधुर लय-तान दे दो ओ पंखेरू!
ज़िन्दगी का गान
फिर से गूँज उठेगा जगत में
ठूँठ भी होगा अनुप्राणित
तुम्हारा प्यार पाकर '
कर्म का संदेश पाकर
स्नेह का अवदान पाकर

इस काव्य संकलन को उत्कृष्ट रुप देने में जिस व्यक्ति ने सर्वाधिक रचनात्मक सहयोग दिया है वे हैं श्री रामनरेश सोनी। कविताओं के चयन, सम्पादन और प्रस्तुति में, संकलन की साजसज्जा में, आवरण पृष्ठ के रंग सामंजस्य में और पारदर्शी के चयन में यानी सभी स्तरों पर उनके व्यक्तित्व की झलक देखी जा सकती है। उनके सर्जनात्मक संस्पर्श ने ही इस काव्य संकलन को उत्कृष्ट बनाने में योग दिया है।

श्री गौरीशंकर 'मधुकर' को उनके प्रथम काव्य संकलन के प्रकाशन के अवसर पर मैं हार्दिक बधाई और उत्तम तथा त्रुटिहीन मुद्रण के लिए कल्याणी प्रेस के संचालक श्री मनमोहन कल्याणी को साधुवाद देना चाहूँगा। मुझे विश्वास है कि यह प्रथम संकलन श्री मधुकर को अच्छे कवियों की पंक्ति में स्थान देगा, उन्हें श्रेष्ठ कवि के रुप में स्थापित करने में सफल सिद्ध होगा।

इत्यलम्।

-भवानी शंकर व्यास 'विनोद'

1-स-9, पवनपुरी
बीकानेर -334003

अनुक्रम

सम्बंध बोध 9
भाईचारा 12
याचना 15
बढ़ती नशेबाजी 18
एक नई उलटबाँसी 21
गधे की अभिलाषा 23
ट्रिक ऑफ द ट्रेड 26
तलाश 28
किस्सा कुर्सी का 32
दहेज 35
पनवाड़ी 37
मेरे भगवान बालकों में हैं 39
वांछा 41
लक्ष्मी-पूजा 42
पद्मा-पुराण 45
एक नया आइडिया 48
समाजवाद 51
नामों का मायाजाल 54
असली मालिक 57
गजल 60
गजल 61
आँखों का भूगोल 62
सुधियों का पहरा 65
विरहा 69
शाश्वत संदेश 70
मेरी धरती 72
कजरारी नदी 75
मन को बाँट लिया 78
अहसास 81

सम्बंध-बोध

मैंने नदी से कहा
रुक जरा
सुन मेरी बात
पर उसे कहाँ फुर्सत थी रुकने की
बहती रही अविरल कल-कल करती
जाना था उसे अपनी मंजिल तक
सींचना था धरती का कण-कण
जीना था कर्ममय जीवन
क्षण, क्षण।

मैंने हवा से कहा
थम जरा
सुन मेरी बात
पर उसे कहाँ रुकना था
बहती रही अविराम
सुबहो- शाम
आँचल में थामे फूलों की सौरभ
महकाना था उसे धरती का आँगन
बाँटनी थी उन्मुक्त प्राणवायु
लख चौरासी जीवों को।

मैंने पंछी से कहा
तू तो सुन मेरे बीर!
आ मेरे पास

करनी है तुमसे बातें कुछ खास।
पर उसे कहाँ सुनना था,
जंगल के निपट नीरव शून्य को
अपनी निराली चहचहाहट से चीरता
फुर्र से उड़ चला वह
देखता रहा मैं दूर तक उसे जाते।
चला गया पंछी
पर गूँजती है अब भी प्राणों में
गीत की मधुर लय-सी
चहचहाहट उसकी।

सोचता हूँ
व्यस्त हैं सब अपने-अपने कामों में
सिर्फ मैं ही निठल्ला हूँ
आलस का, अकर्म का दुमछल्ला हूँ
यह दिल की धड़कन
नाड़ी स्पंदन
सब चल रहे हैं अपनी गति से
फिर मैं ही ठूँठ क्यों हूँ?
जड़ों की ग्राह्यता मरी नहीं है अभी।

नदी!
तुम सींचती रहो यूँ ही,
हवा!
तुम बाँटती रहो प्राण वायु यूँ ही,
पंछी!
तुम चहचहाते रहो यूँ ही,
कल मैं फिर हरा हूँगा
फूटेंगे नए कल्ले मुझसे
निकलेंगी नई शाखाएँ, डालियाँ

खिलेंगे फूल बहुरंगी
फकत अनुरोध इतना है-
जरा-सी आर्द्रता दे दो नदी!
महक दे दो री हवा!
मधुर लय-तान दे दो ओ पंखेरू!
ज़िंदगी का गान
फिर से गूँज उट्ठेगा जगत में
ठूँठ भी होगा अनुप्राणित
तुम्हारा प्यार पाकर
कर्म का संदेश पाकर
स्नेह का अवदान पाकर।

भाईचारा

एक चिड़िया ने
गुरुद्वारे में जाकर बनाया घोंसला
मंदिर में जाकर वह दाना चुगती
मस्जिद में पानी पीती
और चर्च के शिखर पर बैठकर
दिन को उत्सव की तरह जीती
उसे तो नहीं हुई
कभी कोई परेशानी।

हवा का एक झौंका
मंदिर, मस्जिद, गिरजे, गुरुद्वारे
होता हुआ आया
और हमें घर बैठे
शीतलता दे गया।
लेकिन तीर की तरह
चीरती हुई
जब कोई अफवाह उड़ती है
तो सबको अलग-अलग
खाँचों में बाँट देती है।
मंदिर वाले अपने हिसाब से
तो मस्जिद वाले अपने ढंग से
उसे उड़ाते हैं
और पूरे नगर की
हवा खराब कर देते हैं

लोगों के दिलों में
भर देते हैं नफरत
और अंतहीन वैमनस्य!
लेकिन ऐसा भी क्या है
कि किसी चीज का
अंत ही नहीं हो सकता?

मैं बताता हूँ
इसका एक उपाय
सच्चे दिल से कह रहा हूँ
चूंकि जहाँ मैं रह रहा हूँ
वहाँ वर्षों पुराना
एक खंडहर है
और लोग कहते हैं
यह भूतों का घर है
उसके अंदर कोई नहीं जाता है
हर कोई उसे लेकर
तरह-तरह के डरावने किस्से सुनाता है।

मेरा मन करता है
कि जुम्मे के दिन
मस्जिद से नमाज पढ़ने वालों को बुलाऊँ
और यह जगह दिखाऊँ
सोमवार को मंदिर से शिवभक्तों को,
इतवार को चर्च से ईसाइयों
और गुरुद्वारे से सिख भाइयों को
ससम्मान बुलवाऊँ
और कहूँ-
यह है सब की साझी इबादतगाह
सब मिलकर

काव्य का दर्दीला इतिहास!
बस इतना भर दे दो मेरे दाता!
मेरे रचयिता! मेरे विधाता!

दे सको तो दे दो
संगीत की बस्ती में आश्रय ढूँढते
स्वप्नों का वितान
और भविष्य की आँखों में झाँकता
सर्वांग सुखद वर्तमान
फटी व बेदाग चादर में लिपटा
गरीबी का गर्व
और लाचार बस्ती में खानाबदोश घूमता
कोई जन-संकुल पर्व
दे सकोगे मेरे सिरजनहार?

दे सकोगे मुझे
चहचहाते पंखों की संघर्ष भरी
आकाशी परवाज़
और अन्याय के समक्ष चट्टान की तरह खड़ी
किसी मतवाले की एकाकी बेखौफ आवाज़
आँसुओं में भीगी
किसी मजबूर की करुण-कथा
और पहाड़ियों के चेहरे पर लिखी
धरती के हरियल सुहाग की लाचार व्यथा?
बस इतना भर दे दो मेरे दाता!
मेरे रचयिता! मेरे विधाता।

दे सको तो दे दो
राखी की डोर में गुँथी
सम्बंधों की अनमोल मिठास

और रंगों से खेलते
अल्हड़ यौवन का फागुनी लिबास
धुरी पर घूमता हुआ धरती का धर्म
और सम्पूर्ण वृक्ष की संभावनाएँ समेटे
छोटे-से बीज का माटी सना कर्म
सूखे-खुश्क आकाश को भिगोता
सागर का उफान
और धरती के आँचल पर
बूँद-बूँद झरता गगन का स्वस्तिक-गान
आग की लपटों में झुलसते
जीवन के रंग
और फटी-फटी आँखों में छाये
दरिन्दगी के किस्से नंग-धड़ंग!

दे सको तो दे दो
मक्खन की मीठी-मीठी मनुहार
इन्द्रधनुषी प्यार
रंगों की साड़ी पहने वासंती वेला के
पायल की झंकार
ज्येष्ठ के सूरज का ताप
पूनम के चंदा का शीतल-सलौना
प्यारा मेल-मिलाप
कविता के नाम पर
और मुझे कुछ नहीं चाहिए
दे सको तो दे दो मेरे दाता!
मेरे रचयिता! मेरे विधाता!

•

बढ़ती नशेबाजी

नाली में पड़े शराबी को देखकर
मन में मानवता का भाव जागा
मुझे लगा
यह गंदा पानी
अभी इसके मुँह में भर जाएगा
और बेचारा मर जाएगा।
खींचकर उसे बाहर निकाला
झकझोरा और हिलाया
जब उसे होश आया
तो थोड़ा उपदेश भी पिलाया।

मेरे भाई!
इस बुरी लत को छोड़ते क्यों नहीं?
हमारा देश गरीब है
यहाँ पहले से
इतनी बेरोजगारी और भुखमरी है
कुछ काम करना चाहिए न!
राम जाने
शराब से बरबाद होते है
कितने ही परिवार
फिर भी लोग दिनरात लगातार
नशा करते हैं
घुट-घुट कर जीते हैं
बेमौत मरते हैं।

इस पर वह अँगड़ाई लेकर बोलाः
थैंक्यू आपने मुझे उठाया
भगवान आपको उठाएगा!
बराये मेहरबानी
उपदेश मत पिलायें
दस रुपए हों तो
थोड़ी शराब और पिलायें!
लोगों ने सहारा देकर
उसे होटल में पहुँचाया
तो फलसफानां अंदाज़ में वह बोला:

यह नहीं पूछा आपने
कि मैंने शराब क्यों पी?
भला कोई यूँही मरना चाहता है
बेमौत जानबूझ कर?
दरअसल कोई न कोई समस्या होती है
कोई कारण होता है
लेकिन अपने यहाँ
कहाँ उसका निवारण होता है?
वैसे तो सभी लोग करते हैं नशा
पर उनको तो नहीं टोकते आप?
उन्हें क्यों नहीं कहते नशेबाज़?
किसी को धन का नशा है
किसी को सत्ता का
इनके हाथ में तुरुप का पत्ता है
तो उनको पद का नशा है।
ताकत शरीर की हो
तब भी नशा है
और पैसों की हो, तब भी नशा है!
उधर वे अफीम की तरह

पी रहे हैं भाषण
और झूम रहे है सड़कों पर
भगवाँ धारे
उनको क्यों नहीं पिलाते आप
अपना उपदेश?

सचमुच बात गहरी है
महज नशे की बहक कहना
हकीकत से मुँह मोड़ना होगा।
क्या कोई ऐसी तरकीब
या युक्ति है
जिससे देश मुक्ति पा सके,
और देश का हर जागरूक नागरिक
तरह-तरह के नशों की
बारीकियाँ जान सके?

*

एक नई उलट-बाँसी

हमने सब्जी वाले से पूछा
टमाटरों का भाव,
उसने पढ़कर हमारे चेहरे के भाव
कहाः
ये जो इधर पड़े हैं
थोड़े-से सड़े-गले हैं
छह रुपए किलो हैं,
और वो जो ताजे हैं
लाल-लाल और कड़े-कड़े हैं
सिर्फ दो रुपए किलो हैं।
जो कहें सो दे दूँ!
हमने चौंक कर पूछा
अच्छे टमाटर इतने सस्ते?
कहीं भूल तो नहीं रहे?
दिमाग तो नहीं हो गया खराब?
वो हँसकर बोलाः
नहीं, नहीं जनाब!
आपको नहीं मालूम
आज यहाँ होने वाला है
एक शानदार कवि-सम्मेलन।
बढ़िया माल का स्टॉक सीमित है
इसीलिए सड़े-गले माल की
ज्यादा कीमत है।
हमने फिर पूछाः

लेकिन भैये!
बढ़िया वाले सस्ते
और गले-सड़े महंगे
यह उलटवॉसी तो
हमारी समझ से परे है।
उसने सधे हुए समीक्षक की तरह
कॉटा-सा निकालते हुए कहा.
लगता है आप
कवि-सम्मेलनों के आशिक नहीं हैं।
आजकल तो मंचों पर
खुले आम दोयम दर्जे की
सड़ियल कविताएँ ही चलती हैं।
जिसके पास कविता के नाम पर
टोटके हों,
श्लेष के आश्लेष में घड़ी गाली हो
हर चुटकले पर ताली हो
कविता में प्रच्छन्न प्रेयसी
साली या घरवाली हो
वही कविता पसंद की जाती है
फिर भले ही पूरी कविता
जीवन-संवेदन से
खोखली हो, खाली हो।
ऐसे कवियों का ही माल
यहाँ विकता है
इसके विपरीत
गहन-गंभीर कवियों को
सड़े-गले टमाटरों का
अनुपम उपहार मिलता है।

गधे की अभिलाषा

सडक के किनारे मरणासन्न पडे गधे से
भोले शंकर ने जाकर पूछा
वता तेरी अंतिम इच्छा क्या है?
मैं तेरी कर्त्तव्य-निष्ठा और धर्मपरायणता से
बहुत प्रसन्न हूँ
तू चाहे तो अगले जनम में
तुझे आदमी बना दूँ
अतुलित धन-सम्पत्ति से मालामाल कर दूँ
तू पुरुष बनेगा या नारी
चॉइस क्या है तुम्हारी?

वडी मुश्किल से आँखें खोलकर
गधे ने कहा—हे त्रिपुरारी!
मुझे आप अपनी शरण में ले लीजिए
पर इतनी बड़ी सज़ा हर्गिज मत दीजिए।
अगर मरने पर
एक जूण छोड़कर दूसरी जूण देना
आपका दस्तूर ही है
तो अगले जनम में
कुछ भी वनना मुझे मंजूर है-
भालू, भेड़िया या चीता
चूहा, विल्ली या कुत्ता
किसी भी जूण में दीजिए मुझे जीवन दान
पर आदमी वनाकर मत कीजिए मेरा अपमान।

चौंक उठे भोलेनाथ
पूछने लगेः क्यों भई, ऐसा क्यों?
गधा बोलाः हे शिवशंकर! यों कि
आज का आदमी
इंसान कहलाने लायक नहीं रह गया
न उसमें दया है, न हया
न ममता है, न अपनापन
आप खुद ही देख लीजिए
सड़क से सैंकड़ों आदमी गुजर रहे हैं
पर मेरी किसी को परवाह ही नहीं है।
बल्कि मेरी जगह
कोई आदमी भी मर रहा होता
तो इनके लिए वह
मरणासन्न गधा ही रहा होता।
जो दूसरों के घर जलाता है
बस्तियाँ उजाड़ता है
नारियों की माँग का सिंदूर पौंछता है
और निरीह कुमारियों की लाज लूटता है
उस जूण में जाने से मुझे सख्त नफरत है।

इस जूण में रहते हुए ही
मैं तो इनसे मर पाया
आप खुद देख लीजिए
उम्र भर मैंने जिसके डंडे खाए हैं
मेरा वह मालिक
इस अंतिम घड़ी में भी
मुझे देखने नहीं आया।
जो रात-दिन जुए, नशे, हत्या
और अनाचार में
चोरी, डकैती, फिरौती या बलात्कार में

गर्क रहता है
और खोटे धंधे दिन दहाडे करता है
वह आपसे भी तो कहाँ डरता है?
उसमें न धरम बचा है, न ईमान
धरती पर वह घूम रहा है
बनकर हैवान
उपकार के बदले जो देता है अपकार
ऐसे कृतघ्न की कोख
मुझे हर्गिज नहीं चाहिए
मेरे कृपालु!

मुझे जैसे आजन्म मेहनती को
जो गधा कहकर गाली देता है
उसे खुद को आदमी कहते शर्म तक नहीं आती
भोलेनाथ!
हे औढरदानी!
अगले जनम में मेरी किस्मत में
आप चाहे जो लेख लिखें-लिखाएँ
पर बराये-मेहरबानी
मुझे आदमी हर्गिज न बनाएँ।

*

ट्रिक ऑफ द ट्रेड

एक कवि सम्मेलन का
इश्तिहार पढ़ने में आया
पर मतलब कुछ समझ नहीं पाया।
लिखा था:
'प्रवेश निःशुल्क,
निकासी पाँच रुपए'
हमने पूछा:
'ऐसा क्यों है भैये?'
वे बोले.
ऐसा है
दवाएँ बेचने वाली कुछ कम्पनियाँ
आयोजित करवाती हैं
ये कार्यक्रम
और प्रतिवर्ष अपनी सेल बढ़ाती हैं
हॉल के एक दरवाजे को छोड़कर
सब पर ताले जड़वाती हैं
जो लोग
कविताएँ हजम नहीं कर पाते
उनमें से चतुर लोग तो
वहीं सो जाते हैं
पर भोले भाले लोग
जैसे-तैसे
हॉल से बाहर जाना चाहते हैं
उनसे निकासी के बतौर

पाँच रुपए वसूल किए जाते हैं
और जाते-जाते बेचारे
सिरदर्द के मारे
उनकी मेडिकल शोप से
दवाइयाँ भी खरीद ले जाते हैं
इस तरह से
होते हैं दो काम–
आम के आम
और गुठलियों के दाम।

•

तलाश

डॉक्टर साहब
अन्दर ही अन्दर घुले जाते थे
क्योंकि उनके पास
मरीज बहुत कम आते थे।
एक दिन अनायास
उनके पास
एक कवि मोशाय आए
अच्छे शगुन देखकर
डॉक्टर साहब मन ही मन हर्षाए।
कुर्सी से उठकर किया इस्तकबाल
हालाँकि वे उन्हें जानते न थे
फिर भी
मुस्कुराते हुए पूछे
घर भर के और खुद उनके हालचाल,
कैसे हो भई,
खैरियत तो है!
बस फिर क्या था
सिग्नल मिलते ही चल पड़ी मेल-ट्रेन
कवि मोशाय ने
इधर-उधर के संदर्भ देते हुए
एक ही साँस में
पाँच-सात कविताएँ सुना डाली
और अगली कविता सुनाने के लिए
झोले से अपनी डायरी निकाली।

डॉक्टर साहब से रहा नहीं गया
बोले–भाई बस करो
मैंने सोचा, तुम अपना मर्ज दिखाने आए हो!
हाँ, तो क्या तकलीफ है?
कहाँ दर्द है?
क्या बीमारी है?
मरीज की मुद्रा में
आर्त्तनाद करते हुए कवि मोशाय बोले-
हुजूर, फकत आप ही मिले हैं दर्द पूछने वाले
वर्ना बेदर्द जहॉ में
हर शख्स यहॉ जाली है
बहुत भरोसा लेकर आया हूँ आपके पास
कैसी खुश-किस्मत है मेरी
कि मरीजों से घिरे
शहर के बीसों डाक्टरों में
मेरे दर्द भरे गीतों को सुनने के लिए
अकेले आप
संवेदनशील श्रोता के बतौर खाली हैं,
हॉ तो श्रीमान
मेरे दर्द-महाकाव्य का
एक मार्मिक छन्द सुनिए।
डॉक्टर साहब ने कहा
जरा रुकिए
फौरन उन्होंने दराज खोलकर
सौ-सौ के पाँच नोट निकाले
और मुस्कुराते हुए बोले-
बेशक आपका पूरा महाकाव्य सुनूँगा
पर पहले मेरा एक काम कीजिए
और पेशगी के बतौर
यह फीस ले लीजिए।

कवि मोशाय को विश्वास नहीं हो रहा था
अपनी आँखों पर
क्योंकि इतना आकर्षक पारिश्रमिक
किस कवि सम्मेलन में भी नहीं मिला था उन्हें
आज तलक
झट से उन्होंने डायरी को झोले में रखा
और कड़कड़ाते नोटों को जेब में,
कवि मोशाय की काया में अब तक
डॉ. फॉस्टस वाले
मैफिस्टाफिलीज की आत्मा उतर चुकी थी
वे अदब के साथ बोले-
बताइए हुजूर
मैं आपके क्या काम आ सकता हूँ?
डॉक्टर साहब ने
सामने वाले बंगले की तरफ इशारा किया
और बोले-
वहाँ खड़े मरीजों की भीड़ को चीरते हुए
आप सीधे डॉ. घोरपड़े के कमरे में जाइए
और बड़ी चतुराई से, भाव-प्रवणता से
उनको अपना दर्द महाकाव्य
पूरा का पूरा सुनाइए।
आप महाकवि हैं, महावीर हैं,
कवन सो काज कठिन जग मांही
जो नहिं होत तात तुम पाही।
आप इस असंभव काम को
संभव करके आइए
और बदले में मुँहमाँगा पुरस्कार पाइए।
कवि मोशाय बोले-
यह काम तो हुआ समझिए
पर यह तो बताइए

अपने प्रतिपक्षी को महाकाव्य सुनाने से
आपको क्या फायदा?
आराम कुर्सी से उठते हुए
डॉक्टर साहब ने कहा-
आप नहीं समझेंगे कवि मोशाय
उससे तो हम दोनों को कई-कई फायदे हैं
आपको तो मिलेगा एक अदद
उच्च स्तरीय वैल-एज्युकेटेड श्रोता
और मुझे मिलेगी
यहाँ से भागे हुए भगौडे मरीजों की भीड़।
अगर आप रोजाना प्रातःकाल
नियमित रूप से सुनाएँगे उन्हें अपना महाकाव्य
तो उन्हें मिलेगी परम शांति
और मुझे मिलेगी चंद स्वर्ण मछलियाँ।
क्यों, क्या सोचने लगे?
विश्वास रखें मुनाफे में ही रहेंगे आप
और मैं भी नहीं रहूँगा घाटे में
आपको मुँह-माँगा पुरस्कार देकर।

*

किस्सा कुर्सी का

अंतिम घड़ी थी
और नेताजी छटपटा रहे थे,
क्योंकि प्राण निकल नहीं पा रहे थे।
तभी रिश्तेदारों और शुभचिंतकों की भीड़ में
कोने में बैठे
एक दाने आदमी ने
काँटा-सा निकालते हुए कहा-
हो न हो,
इनके प्राण कुर्सी में अटके हैं,
फौरन एक कुर्सी बैकुंठ में भिजवा दो
और हमारे लाडले नेताजी को
भव-बंधन से मुक्त करा दो।
बहुत देर तक
एक असहनीय और बोझिल
खामोशी छाई रही
तभी एक तेज-तर्रार युवक बोला-
अगर यह बात है
तो सौ दो सौ कुर्सियाँ
एक साथ पार्सल करा दीजिए
और इन गैर- जरूरी नेताओं से
देश को बचा लीजिए।
एक दिन एक अजूबा हुआ
सब भौंचक्के,
हैरान-परेशान थे

पर बात किसी के समझ में नहीं आती थी
देखा-
एक कुर्सी प्रकाश की गति से
आकाश में उड़ी जाती थी
कैसा अद्भुत चमत्कार था
सड़कों पर भीड़- भाड़ जमा हो गई
भरी दुपहरी
लोग उल्कापात की मानिन्द
कुर्सी का उत्पात
अर्थात् उड्डयन देख रहे थे।
धम्म-से जाकर
कुर्सी सीधे स्वर्ग में गिरी
जाते ही उसने खुद-ब-खुद
कुहनियाँ मारकर
अपनी जगह बना ली, और
क्यों न बनाए!
नेताजी से पाँच बरस तक
जम कर ट्रेनिंग ली थी
कि कैसे बनाई जाती है
भीड़ में अपनी जगह!
तभी लोगों ने
नभोवाणी से सुना समाचार
कि अमुक-अमुक नेताजी
गए हैं स्वर्ग सिधार
अचानक हो गया है उनका निधन
देश का जन-जन है आज शोक-मगन।
उधर
जूते की ऐड़ी में
कीलें ठोंकते हुए
और उंगली से

माथे का पसीना पोंछते हुए
मामूलीराम ने
सामने बैठे शोक-विह्वल ग्राहक से कहा-
भैये! आप क्यों गम में डूब रहे हैं
ऐसे घाघ नेताओं को तो
मौत भी तब आती है
जब स्वर्ग में उनकी सीट
रिजर्व हो जाती है।

*

दहेज

एक नेताजी
समाज सुधारक की मुद्रा में
दहेज पर
धारा-प्रवाह भाषण दे रहे थे
भाषण सुनकर
लोग मंत्र- मुग्ध हो रहे थे।

वे बोले:
दहेज की विभीषिका ने
कई-कई दुल्हनों को मार डाला
सासों ने बहुओं को
कैरोसिन छिड़कर जला डाला
कब होगा
इन सामाजिक कुरीतियों का अंत
या यूँही चलती रहेंगी ये
युगों पर्यंत?

तभी सुनने वालों में से
एक श्रोता बोला तुरंत
हे राजनीति के महंत!
आप भाषण तो बहुत अच्छा देते हैं
पर क्या वाकई
आप खुद दहेज नहीं लेते हैं?

भरी सभा में
छुरे की तरह उछल कर आए
इस पैने सवाल से
नेताजी सकपका गए
और तैश में आकर कहने लगे:
क्यों जी! आपको इससे क्या?
भाषण देने की चीज है
सो दे रहे हैं
और दहेज लेने की चीज है
सो ले रहे हैं।

*

पनवाड़ी

हमारे घर से बाहर
गली के नुक्कड़ पर थी
एक पान की दुकान
पनवाड़ी था हम पर बड़ा ही मेहरबान।
हमें देखते ही
दूर से कविराज, कविराज चिल्लाता,
और पास बुला कर
मुफ्त में पान खिलाता।
फोकट का कुछ खाकर
भला किसे मजा नहीं आता
सो हमें भी आता था।
पान की गिलौरी मुँह में जाते ही
कुछ रोमोटिक छंद फूटने लगते थे
पर ऐसा कम ही होता था
क्योंकि अक्सर वह पान में
चूना कुछ ज्यादा ही लगाता था।
लोग उसका पान खाने
इसलिए भी आते थे
क्योंकि जायकेदार पान के साथ-साथ
लच्छेदार बातें बनाने में भी
दूर-दूर तक उसका सानी न था।
दीनो- जहान की बातें सहेज कर रखता था
और वक्त- जरूरत हर खासो- आम के काम
आता था।

बड़े-बड़े नेता
उसके यहाँ पान खाने
और राज की बातें जानने आते थे।
किसी तरह एक नेता को उसने पटा लिया
और चुनाव में खड़े होने के लिए
पार्टी का टिकट पा लिया।
भाग्य का चमत्कार कहें
कि आज वह सरकार में मंत्री है
बहुत-बड़ा बंगला है, कारें हैं, संत्री हैं।
कुछ दिनों पहले अखबार में
पढने को मिला यह समाचार
कि मंत्रीजी भी हो गए हैं
घपाला कांड के शिकार।
सरकार को इन्होंने
करोड़ों का चूना लगाया है।
बड़े-बूढ़े ठीक ही कहते हैं
कि एक बार जिसकी जैसी आदत पड़ जाती है
वह लाख छिपाने पर भी प्रकट हो जाती है।
जो पनवाड़ी की जूण में
उम्र भर चूना लगाता रहा
वह आज मंत्री बन गया है
तब भी चूना लगाने से बाज कैसे आएगा?
लोग तो यूँही चिल्लाते हैं
क्योंकि चिल्लाने की उन्हें
आदत पड चुकी है
जबकि सचाई को वे भी जानते हैं
कि इस देश को ऐसे ही नेता भाते हैं
जो हर विभाग में
सरकार को चूना लगाते हैं।

मेरे भगवान बालकों में हैं

कितने सुंदर और निर्मल हैं
आपके विचार
जन-जन तक होना चाहिए
इनका पावन प्रचार।

अभी आपने बच्चों को
भगवान का रूप कहा
कि यही हैं हमारे देश के
करोड़ों देवी-देवता
शायद इस बात का तो
आपको भी नहीं पता
किंतु मेरे मन में
बार-बार यही प्रश्न कुलबुला रहा है
कि वह पाँच सितारा होटल वाला
इन देवी-देवताओं से
जूठी कप -प्लेटें क्यों धुला रहा है?
यह देवता रूपी बालक
इतना गंदा और मैला क्यों है?
भीख के लिए इसका हाथ
हर किसी के आगे फैला क्यों है?
जिसे होना चाहिए था
विद्या मंदिर में
वह पेट के लिए बोझा क्यों ढोता है?
वह धुँआ उगलती चिमनियाँ वाले

कल-कारखानों में
अपनी आँखें क्यों खोता है?

ये दुधमुँही बालिकाएँ
कचरे के ढेर से
प्लास्टिक की थैलियाँ क्यों बीनती हैं?
धनिकों की लिप्साएँ
इनका निरीह बचपन क्यों छीनती हैं?
देखो यह किशोर
चढ़ाई पर किस कदर जबड़े भींच रहा है
रोको उस भगवान को
जो गैंडे जैसे भारी आदमी को
रिक्शे में बिठाकर खींच रहा है।

ऐसे ढेर सारे चरित्र
अबोध बालक-बालिकाओं के चित्र
मैं आपको जहाँ-तहाँ दिखा सकता हूँ।
भगवान के लिए
अपने उत्तम विचार अपने पास ही रखिए
पेट की लड़ाई वाले इन बच्चों को
भगवान का प्रतिरूप हर्गिज मत कहिए।
ये अभिमन्यु
अपना चक्रव्यूह अपने आप भेद लेंगे।

*

वांछा

घर तब लगता है घर
सचमुच सत्य, शिव, सुंदर
जहाँ बच्चों की किलकारी हो
भोली सूरत प्यारी-प्यारी हो
रूठना, मनाना हो
छिपना, छिपाना हो
सबका मेलजोल हो
आना हो, जाना हो
खेल हों, खिलौने हों
बच्चे चंचल, सलौने हों
दीदी हो, भैया हो
कृष्ण-कन्हैया हो
दाऊ जैसे भैया हो
सभी ग्वाल- बाल हों
खुशियों का साल हो
बहती रहें, सूखें नहीं
घी-दूध की नदियाँ
प्रदूषण रहित हों
हरी-हरी वादियाँ
घर आये मेहमां का
स्नेह से सत्कार हो
ऐसे हम सब के
सुंदर विचार हों।

*

लक्ष्मी पूजन

एक दिन अकस्मात
कविप्रिया कमरे में आई
और कविराज को ठाले बैठे देखकर
उन पर गुर्राई।
बोलीः आप जानते नहीं क्या?
लक्ष्मीजी का वाहन है उल्लू
और सबके सब लगे हैं सीधा करने
अपना अपना उल्लू।
कविराज ने पूछाः
वह कैसे भागवान!
कविप्रिया बोली : ऐसे श्रीमान!
नेता करता है वोट से,
व्यापारी करता है
मिलावट और खोट से,
तो हकूमत करती है
बढते हुए आँकड़ों और रिपोर्ट से
ठेकेदार करता है टैंडर से
तो इंजीनियर करता है
कमीशन के शर से।
एक तुम हो
जो मुंई कविता को लेकर बैठे हो
शब्दों के जाल में ऐंठे हो
कविता का यह जंजाल
कितनी सारी जगह घेरता है

इसे बेचना चाहो
तो रद्दी वाला भी मुँह फेरता है।
अगर आपको कविता पर
इतना ही भरोसा है
तो जरा चक्की वाले को
कविता सुनाकर
दो किलो आटा
और सब्जी वाले से
आधा किलो आलू ही ले आओ।
कविप्रिया ने
जरा तेवर बदल कर देखा
और दुबके हुए कविराज के सामने
एक मौलिक आइडिया फेंकाः
मेरी मानो तो आप
उल्लू पर महाकाव्य लिखो
जो लक्ष्मी का वाहन है
पतित पावन है
हम से नाहक ऐंठा है
बरसों से टेढा होकर बैठा है,
अगर आपका महाकाव्यात्मक
स्तुतिगान सुन कर
थोडा-सा भी सीधा हो जाएगा
तो दुख-दारिद्रय-दुष्काल का
यह छप्पर
अपने आप फट जाएगा,
रुपयों की बरसात होगी
और मंगल कलश लिये
लक्ष्मी खुद चलकर घर आएगी।
फिर तो ऐसा आश्चर्य हुआ
मानो भाव-बोध में चली गई थी

कविप्रिया।
नेत्र मुंदे थे, अंतर्घट के द्वार खुले थे
बोल रही थी ऊँचे स्वर में-
हे लक्ष्मी मैया!
कुछ तो तुम ही कृपा करो
मेरा उल्लू सीधा कर दो
कम से कम इस दीवाली पर
एक करोड़ का बम्पर ड्रॉ ही
मेरे नाम पर खुलवा दो।
घी के दीप जलाऊँगी मैं
लड्डू रोज खिलाऊँगी मैं
कैद नहीं रखूँगी तुमको
लॉकर और तिजोरी में
खुली हवा में घूमोगी तुम
सैर करोगी शहरों की
पाँच सितारा में ठहरोगी।
पहनोगी तुम नए-नए फैशन के गहने
और साड़ियाँ
कर दूंगी सचमुच मैं
कायाकल्प तुम्हारा
तुम्हें देखकर सचमुच भ्रम में पड जाएँगे
पुरुष पुरातन
अरी चंचला!
अब तो कृपा- दृष्टि बरसा दो
धनियों के उल्लू की गर्दन टेढ़ी कर दो
लेकिन मेरा उल्लू सीधा कर दो
मेरा उल्लू सीधा कर दो
सीधा कर दो।

•

पट्ठा-पुराण

दोस्तो
मेरा कहा मानो
खूब माल खाओ और भंग छानो
पाटों पर बैठे-बैठे
चोपड़-ताश खेलो
इमली के पत्तों पर
मगरमच्छ की तरह डंड पैलो
हर वक्त
काम क्या करना है
क्या बेवक्त सस्ते में ही मरना है?
तुम्हारा काम कैसे चलेगा
जैसे नेताओं का चलता है?

सूरज भी सुबह उगता है
तो शाम को जाकर ढलता है
तुम अभी से फिक्र करते हो
जवानी में बुढापे का जिक्र करते हो
डरो नहीं
किसी नेता के चमचे बन जाएँगे
तो नीयर फ्यूचर में
मुकद्दर खुद- ब- खुद खुल जाएँगे।
यह तो नया जमाना है प्यारे!
लक्ष्मी अगर मेहरबान हो
तो हम उसके

चट्टे-चट्टे बन सकते हैं
और अगर वह
उल्लू के मार्फत आती है
तो हम उल्लू के पट्ठे बन सकते हैं।

बिना किसी के पट्ठे बने
कोई घास नहीं डालेगा
और आज के जमाने में
ऐसा कौन है
जो दस-बीस पट्ठे नहीं पालेगा?
अरे! पट्ठे ही तो जाजम जमाते हैं
साधक को सिद्ध बनाते हैं
अगर पट्ठे न हों
तो उनका एक भी दिन
चैन से नहीं बीत सकता।
और पट्ठों के बिना
नेता भी चुनाव नहीं जीत सकता।

लोग कुर्सी पर आते हैं
बैठते ही बदल जाते हैं
पर दो नंबर से लेकर
चार-सौ-बीसी तक
सारे के सारे मामले
पट्ठे ही सल्टाते हैं।

अब बाजार में
दवा की चर्चा नहीं है
चर्चा में बीमारी या मर्ज है
वैसे ही पट्ठों की गर्ज है
भई, राजनीति के फिल्मी-संगीत की

आजकल यही
सदाबहार तर्ज है,
ऐसे में अगर आप पट्ठे बन जाते हैं
तो भला इसमें क्या हर्ज है?
इसीलिए कहता हूँ दोस्तो!
मेरा कहा मानो
खूब माल खाओ और भंग छानो
नेता को अपना ईश्वर
और पट्ठाई को ईमान मानो
अगर आप
यह नुस्खा अपनाएँगे
तो खुद तो तरेंगे ही
सच मानें
सात पीढ़ी के पुरखे भी
तर जाएँगे!

*

एक नया आइडिया

हुजूर चीफ गैस्ट!
आप जीते हुए खिलाडियों को ही
पुरस्कार देंगे
और हमें नहीं देंगे
तो हम भी देख लेंगे।
मैदान में जो कुछ होता है
हमारे बल पर होता है
क्योंकि हम दर्शक हैं
श्रोता हैं।

आप जानते हैं
श्रोता के बगैर
गायक गा नहीं सकता,
नेता चिल्ला नहीं सकता,
खिलाड़ी खेल नहीं सकता
तमाशबीन के बगैर,
पहलवान कुश्ती नहीं लड़ सकता
दर्शकों के बगैर!

कहा भी हैं-
मुसाफिरों के बगैर गाड़ी क्या?
और तमाशबीनों के बगैर खिलाड़ी क्या?
अगर हम नहीं होते
तो किसकी वाहवाही लूटते?

किसी न किसी को तो ढूँढते?
क्यो हमें फालतू समझा है
जो मुफ्त में आ जाएँगे
आपकी तारीफ करेंगे
तालियाँ बजाएंगे
और खेल खतम होने पर
हमारी छाती पर पैर रखकर
पुरस्कार आप ले जाएँगे?

अब यह बहम छल नहीं सकता
आपका अत्याचार
ज्यादा चल नहीं सकता
हमारी एकमात्र माँग है–
हमारा भी हौंसला बढाइए
हर एक को एक-एक ट्रॉफी दिलाइए!
होना तो यह चाहिए
कि जो श्रोता हर जगह आते हैं
और आपको मिल जाते हैं नितांत फ्री
उनको दिलाइए श्रोता-श्री,
और जो निमंत्रण-पत्र से आते हैं
ऊँची कुर्सियों पर बैठकर
उत्सव की शोभा बढाते हैं
प्रसिद्धि पाने के
जिनके नायाब प्रयत्न हैं
ऐसे सभी दर्शक श्रोता-रत्न हैं।
जो दर्शक
चंदा देकर नवाजते हैं
फिर अध्यक्ष या मुख्य अतिथि बनकर
जलसे के केन्द्र में बिराजते हैं
जो हर उत्सव या प्रोग्राम के लिए

विघ्न-विनाशक हैं, विनायक हैं
ऐसे उच्च स्तरीय श्रोता
श्रोता-शिरोमणि के लायक हैं।
इसीलिए कहते हैं:
हमारा हौंसला भी बढ़ाइए
कलाकारों और खिलाड़ियों की मानिंद
हमें भी श्रोता-पुरस्कार दिलाइए
नहीं तो लेनी की देनी पड़ जाएगी
आपकी यह महफिल
पलक झपकते उखड़ जाएगी।

*

समाजवाद

पेट के लिए काम करते हैं
सबसे डरते हैं और डराते हैं
खूब खाते हैं और खिलाते हैं
खूब पीते हैं और पिलाते हैं
यूँ कड़ी से कड़ी मिलाते हैं
यही हमारी मजबूती का राज हैं
अरे दोस्त! तुम हँसते हो
इसमें भला हँसने की कौनसी बात है?
यही तो सच्चा समाजवाद है।

समाज के लिए काम करते हैं
और समाज के लिए धरते हैं
अरे खुद खा-पीकर
खुद को स्वस्थ नहीं बनाएँगे
तो समाज की सेवा
क्या खाक कर पाएँगे?
जो लोग अपनत्व की कीमत जानते हैं
वे अपने-पराये में भेद नहीं करते
समाज की सम्पत्ति को
अपना ही मानते हैं।
यह तो एक मंदिर है
भव-बंधन को खोता है
चढ़ावा जो भी आए
पहला हक्क तो पुजारी का ही होता है।

फिर भी असंतोष होगा
तो अपने आप छँट जाएगा
क्योंकि प्रसाद की थाली में से
थोड़ा बहुत प्रसाद
भी मिल जाएगा
आपको
अपना तो यही सनातन नियम है
यही नियम जिन्दा है
और यही आबाद है
यही तो असली समाजवाद है।

किसी ने पूछा-
अगर यही बात है
तो समाजवाद का शार्टकट बताओ
हमने कहा-
पहले खाओ, फिर खिलाओ
इसी तरह सबको अपना बनाओ
गरीबों में भाषण दो
आप महान हैं
आपका हृदय विशाल है
आप ही इस समाज की ढाल हैं
जो आदमी जितना ज्यादा गरीब है,
वही तो समाज के
सबसे अधिक करीब है।
सपने ऐसे रचो कि
खुशहाली आएगी
हर चेहरे पर रौनक होगी
घर- घर में दीवाली आएगी
इस गरीब मुल्क के लिए तो
विदेशों से लाए हुए
समझौते ही पेटेंट हैं

खुशहाली की खुशबू के लिए
वही बढ़िया इत्र है
वही शाश्वत सेंट है।
महज इतना ही पर्याप्त है, काफी है
आपने कुछ गुनाह भी कर दिया हो
तो उस गरीब की तरफ से माफी है
नेताओं की खातिर समाजवाद
बैंक नहीं, टकसाल है
कैसा अनुपम रिश्ता है–
यह ससुराल है
तो आप दामाद है।
मेरे भाई!
यही तो असली समाजवाद है।

नामों का मायाजाल

आप नाम देने में बड़े माहिर हैं
जनता को जनार्दन
किसान को अन्नदाता
नारी को देवी
मजदूर को भाग्य- विधाता
और शिक्षक को गुरुर्ब्रह्मा
कह कर रिझाते हैं
तो बच्चों को
भगवान का रूप बताते हैं।
पर इन विशेषणों का चिट्ठा तो
बड़ा ही कच्चा है।
उसका जिक्र न ही किया जाए
तो अच्छा है।
बचपन सड़ता है मजदूरी में
मजदूरी सड़ती है मजबूरी में
खेत लोगों की तिजोरियाँ भरता है
और अन्नदाता किसान
भूखा मरता है।
जनता स्वतंत्र होकर
मतदान करती है
अपने लिए एक हुकूमत बनाती है
और देखते ही देखते
पाँच सालों के लिए
खुद गुलाम बन जाती है।

मुल्क में ईंधन की कमी है
यहाँ बहुओं को जलाया जाता है
स्टोव या गैस में
न जाने क्या फिट किया होता है
जो ठीक वक्त पर
ठीक व्यक्ति के लिए
ठीक तरीके से
खुद व खुद फट जाता है
और सासों को नहीं
सिर्फ बहुओं को ही जलाता है।
इस तरह जिंदगी का दुखड़ा
खुद- ब- खुद कट जाता है।
ज्ञान का दाता गुरु
गरीबी में जीता है
कुल मिलाकर
नामों का यही तो फजीता है।
समय आ गया है
कि हम नए अर्थ गढ़ें
नए कोश बनाएँ
और नामों के मायाजाल पर
यथार्थ का नया मुलम्मा चढ़ाएँ!
कृषि में जिसका किस्सा न हो
हिस्सा न हो, वह किसान है।
और रहे जो दूर मजे से
उसे पुकारें हम मजदूर।
जिसकी किस्मत में लिखा हो
कदम-कदम पर ना ही ना
वह है नारी
जंतु तुल्य हो जीवन जिसका
वह है जनता बेचारी।

बच्चा वह है
जिसकी बची-खुची आशाएँ
छलती रहें निरंतर उसको
और मास्टर वह है
जिसको मास-मास दर मास-मास तक
टरकाया जा सके सहज ही।
अगर आप कुछ नहीं कर सकते
तो कम से कम
प्रपंच को तो तोड़ें
शब्दों के छल को छोड़ें
बेसुरेपन को दफनाएँ
थोड़ी देर के लिए ही सही
यथार्थ के धरातल पर तो आएँ
ये किसान, ये मजदूर
ये बच्चे और यह नारी
यह मास्टर और
यह जनता बेचारी
ये तो वैसे ही
डरे-डरे से साँस लेते हैं
फिर इन्हें बरगलाने के लिए
आप इन्हें
व्यर्थ के नाम क्यों देते हैं?
अच्छा हो
गरल मिले या अमृत
जो भी इनके भाग्य में लिखा हो
इन्हें अपने ढंग से जीने दो
चैन से जीने दो
भरमाओ मत, बहलाओ मत
शांति से जीने दो।

•

असली मालिक

कुछ लोग
किराये के मकान को भी
इतनी आत्मीयता से अपनाते हैं
कि अपने-पराये तक का
भेद भूल जाते हैं।
यहाँ तक कि उसको
अपना पुस्तैनी बताने से भी
नहीं कतराते हैं।
असली मालिक के साथ भी
वे कर जाते हैं घोट
इसी को कहते हैं
नीयत में सौ टंच खोट।
ऐसा करना उनका
नितांत मौलिक दृष्टिकोण है
दुनिया के सभी नाते-रिश्ते
उनके लिए गौण हैं।
कोई गैर को अपनाना सीखे
तो इनसे सीखे
कोई लिखना चाहे
तो इतिहास इनका लिखे।
एक बार जो कब्जा कर लिया
तो पीढ़ियों की गई
इनके लिए ऐसा करना
है कौनसी बात नई?

व्याधि कोई भी हो
उपचार के संधान ये ही हैं
धनवन्तरी भी ये ही हैं
और लुकमान भी ये ही हैं
इतिहास बेशक हो जाए मौन
फिर भी दिशाओं से आवाज़ आएगी
मालिक का मालिक कौन?
एक बात का जवाब दो,
आपको परायी पूँजी चाहे प्यारी है
पर जिस पर तुम करते हो गर्व
क्या वास्तव में यह देह तुम्हारी है?
या यह भी है एक
भ्रम का वितान
जैसे अपना सकते हो तुम
किराये का मकान।
सारा रहस्य इसी बात में है
घोड़ा चाहे जितना तेज दौड़ ले
पर असल में रास किसके हाथ में है?
अगर अब भी नहीं समझे
तो आप सचमुच में भ्रांत हैं।
आपको समझाने के लिए
यह तो महज एक दृष्टांत है।
जब समय-सीमा आई
तो मकान मालिक ने
फरिश्तों के हाथ में एक सूची थमाई।
बोलेः
यह एक परवाना है
अमुक-अमुक नरपुंगवों से
अपना मकान खाली करवाना है।
हरकारे आए

नोटिस थमाए
कुछ ने डॉक्टर बुलाए
कुछ स्टे-आर्डर लाने को हड़बड़ाए
कुछ रिरियाये, गुर्राए, चिल्लाए
पर एक की भी नहीं चली
जोरावर के आगे
दाल किसी की नहीं गली।
आखिर मकान खाली करना पडा
मालिक की इच्छा के आगे
झुकना पड़ा
क्योंकि मालिक का फरमान था
मिट्टी को मिट्टी में मिला दिया गया
नयी मिट्टी से
दस दरवाजों वाला
एक नया मकान बनवाया गया
उसमें रहने को फिर से
एक नया किरायेदार आया।
इस हकीकत से
कोई बच नहीं पाया
कि मालिक के आगे
सबको झुकना ही होगा
दस दरवाजे हैं
किसी में से तो निकलना ही होगा।
अब बताइए
क्या किराये का मकान आपका है?
या आपके बाप का है?
इतिहास रह जाए चाहे मौन
पर दिशाएँ जवाब देंगी
मालिक का मालिक कौन?
मालिक का मालिक कौन?

ग़ज़ल

प्रेमी दिल ही कर सकता है सौदा प्रेम परस्ती का!
पत्थर दिल क्या मोल करे ताजे फूलों की मस्ती का॥

धूप गुनगुनी माँ की ममता गंध फूल की कहाँ बिके?
वैसे तो बाजार भरा है चीजें मँहगी सस्ती का॥

मेघों की टोली बरसे या चाहे दूर निकल जाए।
कोई पता कहाँ होता है बनजारों की बस्ती का॥

स्याह रात तूफानी नदियाँ नौसिखिए मल्लाह यहाँ।
ऐसे में मालिक ही जाने क्या होगा उस कश्ती का॥

छोड़ घोंसला उड़े गगन में भला हाथ फिर क्यों आएँ।
दूर सितारों तक फैला है आलम स्वार्थ परस्ती का॥

रात हुई तो रजनीगंधा सूर्यमुखी से यों बोली।
दिखने लगा इलाका बहना, तेरी बंजर बस्ती का॥

अच्छे-भले उखड़ जाते हैं मानो हों निर्मूल निपट।
इंतिखाब में जादू चलता जब जनता की हस्ती का॥

उसकी व्यथा अनूठी है जो आँसू पी मुस्काती है।
मर्म समझ पाता है विरला दर्द-भरी उस मस्ती का॥

•

ग़ज़ल

आज खुद अपने से हारी ज़िन्दगी।
यह तुम्हारी और हमारी ज़िन्दगी॥
कल तलक फिर धूल से अँट जाएगी।
आज की झाड़ी-बुहारी ज़िन्दगी॥
पास अपने है मगर अपनी नहीं।
हम तो लाए हैं उधारी ज़िन्दगी॥
स्वप्न में अरमां विजय के थे मुखर।
जागरण हारी करारी ज़िन्दगी॥
क्यों गरीबी का प्रसव रुकता नहीं।
डगमगाये पाँव भारी ज़िन्दगी॥
इस तरफ है अर्थ, अर्थी है उधर।
बीच में झूले बिचारी ज़िन्दगी॥
इक घुटन साँसों में है दिल में चुभन।
मौत मरहम है कटारी ज़िन्दगी॥
है कहाँ हिम्मत खिलाफत कर सके।
यह तो है कन्या कुमारी ज़िन्दगी॥
कौनसे पहलू की हम गणना करें॥
जहर में डूबी दुधारी ज़िन्दगी॥

*

आँखों का भूगोल

आँखों का भूगोल बहुत ही छोटा हैं
लेकिन इसमें सारी सृष्टि समा जाती
तुम इनका विस्तार भला क्या नापोगे
आँखों में से पूरी रात निकल जाती

रूप-राशि का भरा सरोवर हो चाहे
एक झलक में पी जाती हैं ये आँखें
प्रेयसि की कजरारी आँखों में बैठी
कजरी तीज मना जाती हैं ये आँखें

रातों में श्रृंगार शतक जब चलता है
तो आँख चुराता है चंदा शर्माता है
कभी दुबक जाता है बदली के पीछे
कभी प्रकट होकर अमरित बरसाता है

अधरों औ पलकों का मिलन देख करके
दृष्टि रेशमी साड़ी में जा छिप जाती
बिना नशे के भी ये बडी नशीली हैं
छलक-छलक कर रस की गागर बन जाती

आँखों का भूगोल बहुत ही छोटा है
लेकिन इनमें सारी सृष्टि समा जाती॥

आँखों में जब मौसम फाग रचाता है
मस्ती की गलियों में खो जाती आँखें

मुँह तो खुलता नहीं शब्द चुप रहते हैं
कई अनकही बातें कह जाती, आँखें

गोरे गालों पर मधुरस की प्याली-सी
जब इन पर कुछ अल्हड़ता छा जाती है
रस में भीगी-भीगी कुछ शर्मीली-सी
ये मनचाही प्रेम-कथाएँ लिख जाती हैं

कजरारी रतनारी मतवारी आँखें
कहीं-कहीं तो स्वयं प्रीत बन जाती हैं
कहीं रेशमी फिसलन वाली रूमानी
ग़ज़ल कहीं, तो कहीं गीत बन जाती हैं

क्षण भर में सारे क्षितिजों को नाप सके
हिरणों जैसी कई कुलाँचें भर जाती
कहीं व्याध-सी छिपी लाज के घूंघट में
चितवन के शर से तन घायल कर जाती

आँखों का भूगोल बहुत ही छोटा है
लेकिन इनमें सारी सृष्टि समा जाती॥

उधर किशोर-किशोरी गुमसुम बैठे हैं
चुपके-चुपके प्यार पल रहा आँखों में
मानो मस्ती का सागर लहराता है
तटबंधों को तोड़ महकती आँखों में

कहीं अनमनी कहीं अचंचल हैं आँखें
कुछ विस्मय में डूबी हुई अजानी-सी
जब वियोग की पीर छलकती है इनमें
लगे वंदना की बस एक कहानी-सी

कभी पालकी-सी बन जाती हैं पलकें
लज्जा रानी बैठ मधुर मुस्काती है
अगवानी करती है कहीं इशारों में
मनुहारों में आमंत्रण दे जाती है

कभी क्रोध में तपती दुपहरिया बनती
झुलसा देने वाली आग बरस जाती
शिशु-शावक-सा कहीं मचलता भोलापन
तो सहमी-सहमी ठगी-ठगी-सी रह जाती

आँखों का भूगोल बहुत ही छोटा है
लेकिन इनमें सारी सृष्टि समा जाती
तुम इनका विस्तार भला क्या नापोगे
आँखों में ही पूरा रात निकल जाती॥

सुधियों का पहरा

तब याद तुम्हारी आती है
बरबस दिल को दहलाती है।

जब पंछी मधुर-मधुर स्वर में
इस मौसम की मनुहार करें
जब किसी फूल की गोदी में
भँवरा तितली से प्यार करे

सावन में भीगी धरती जब
मन में मादकता भरती हो
जब पवन ठिठोली करता हो
लहरें मनमानी करती हों

उस वक्त कोकिला पंचम में
जब अपनी तान सुनाती है
धरती वासंती वस्त्रों में
प्रियतम को स्वयं लुभाती है

तब याद तुम्हारी आती है
बरबस दिल को दहलाती है।

अधरों पर तेरा नाम लिये
ऊषा हर रोज जगाती है
संध्या ढलते-ढलते तेरा
संदेश नया दे जाती है

रातों में नींद नहीं आती
बस केवल सुधियाँ आती हैं
करवट लेते-लेते मेरी
हर रात भोर बन जाती है

चुपके से गंध चुरा करके
जब हवा बहक-सी जाती है
हर बिम्ब-बिम्ब में सिर्फ एक
सूरत ही जब रह जाती है

तब याद तुम्हारी आती है
बरबस दिल को दहलाती है।

कैसे भूलूँ वह मधुर-मिलन
कैसे भूलूँ मधु-यामिनियाँ
फिर मुस्कानों से भरी हुई
अरुणिम-उज्ज्वल मुक्ता-मणियाँ

स्वप्नों में इन्द्रधनुष खिलते
मधुकोष भरी तेरी बातें
कैसे भूलूँ सोने के दिन
उजली चाँदी-सी वे रातें

कैसी थी प्रेम-प्रसंगों की
अपनी धारावाहिक कड़ियाँ
कितनी जल्दी बीता करती
लम्बी रातों की वे घड़ियाँ

पल आँख लगे पल खुल जाएँ
पीड़ा तन में घुल जाती है
रेशमी मिलन की सुधियों में

मन की बगिया खिल जाती है

तब याद तुम्हारी आती है
बरबस दिल को दहलाती है।

तेरे तन की सौंधी सुगंध
तब तेरे मन की गहराई
बस रोम-रोम में रम जाती
तेरी वह मादक तरुणाई

हर पवन गुदगुदी करता था
नस-नस में नशा उतरता था
हर पोर-पोर निर्झरिणी था
रस का झरना ही झरता था

रहता बसंत बारह महिनों
यह कथा न भूली जाती है
पुरवाई की मादक बयार
कानों में कुछ कह जाती है

तब याद तुम्हारी आती है
बरबस दिल को दहलाती है।

हे भुवन-मोहिनी अब आकर
मेरी पलकों में बस जाओ
मेरे दिल मे अभिसार करो
और रोम-रोम में रम जाओ

मैं चंदा से लेकर उधार
तुझ पर चाँदनी लुटा दूँगा

मौसम की हरियल चादर को
मैं पाँवों तले विछा दूँगा

पुष्पों की मुस्कानें पाकर
लहरें संगीत सुनाएंगी
तरुणाई अपना वैभव पा
मदमस्त कथा वन जाएगी

भावों की निःस्वन सरगम में
जव तृषा-राग छिड़ जाती है
रजनी वियोगिनी हो करके
मुझको ज्यादा तरसाती है

तव याद तुम्हारी आती है
वरवस दिल को दहलाती है।

•

बिरहा

निर्दय प्रीतम तुम ना आये
तुम ना आए, तुम ना आये।
रह-रह याद तुम्हारी आती
लिख-लिख भेजी तुमको पाती
किसको अपना दर्द बताती
मन ही मन में मैं अकुलाती
निर्दय प्रीतम तुम ना आये
तुम ना आए, तुम ना आये।
सावन में मनभावन दूर
प्रीतम बन गए कैसे क्रूर
चूड़ी, पायल गुमसुम-गुमसुम
मन बोले बस प्रीतम-प्रीतम
निर्दय प्रीतम तुम ना आये
तुम ना आए, तुम ना आये।
आसमान में बादल छाये
मोर टहूके कोयल कूके
बिजली चमके घन गरजाये
साँस-साँस में तुम्हीं समाये
निर्दय प्रीतम तुम ना आये
तुम ना आए, तुम ना आये।

*

शाश्वत संदेश

भावनाएँ शुद्ध हों, न हों जरा भी आसुरी।
दिल की वादियों में जहाँ बजती रहे बाँसुरी॥
आपसी सम्बन्धों में मन की मिठास हो।
प्रेम की प्यास हो, और गंगा का वास हो॥
मिल सकें भगवान जहाँ आदमी के वेश में।
आओ चलें आज प्रिय, प्यार के देश में॥

आदमी के वास्ते स्नेह हो सत्कार हो।
जो मिले जहाँ मिले प्रेम की मनुहार हो॥
सरगम के सातों स्वर एक राग टेरते।
मानस की मस्ती में राजहंस तैरते॥
मन हो चमेली-सा हर्ष में या क्लेश में।
आओ चलें आज प्रिय, प्यार के देश में॥

सेतु सेतु बनें जहाँ हों न खोह-खाइयाँ।
मधुर-मधुर गीत बन जाएँ ये तनहाइयाँ॥
माटी की महक हो विहंग वाली चहक हो।
आँखों में पुलक हो और गीतों की महक हो॥
गले मिल जाएँ चाहें मिलें परदेश में।
आओ चलें आज प्रिय, प्यार के देश में॥

द्वेष वैर हो न जहाँ कोई दु:ख द्वन्द्व हो।
स्वार्थ का न बंध हो न कोई छल-छन्द हो॥
मिसरी जैसी घुली-घुली मस्त आवाज़ हो।

पंछियों की मुक्त-मुक्त प्यारी परवाज हो॥
धड़कनों में प्यार हो याद रहे शेष में।
आओ चलें आज प्रिय, प्यार के देश में॥

छलछलाती मस्तियों के छलछलाते नाम हों।
ज़िन्दगी का एक नाम प्यार का पैगाम हो॥
ऊषा की लालिमा को लोग जहाँ साधते।
भोर के पाँवों को किरणों से बाँधते॥
शांति की आरती हो मौन और मेघ में।
आओ चलें आज प्रिय, प्यार के देश में॥

ज़िन्दगी मिली हमें यो मधु का ही कोष है।
गल्त इसे समझें तो दृष्टि का ही दोष है॥
रूप की यह राशि है यौवन की तरंग है।
कंचन-सी काया और मन की उमंग है॥
क्यों न इसे बिताएँ हम आनंद में ऐश में।
आओ चलें आज प्रिय, प्यार के देश में॥

कंचन बनाता चले प्यार एक पारस है।
दूरियों को लाँघे जो साइबेरिया का सारस है।
रति लीन क्रौंच है जो मुग्ध भूल जाता है।
किसी वाल्मीकि में जो काव्य को जगाता है॥
गूँजता है मीरा के काव्य के संदेश में।
आओ चलें आज प्रिय, प्यार के देश में॥

*

मेरी धरती

कुदरत जिसकी स्वयं आरती करती है।
मेरी धरती है यह मेरी धरती है॥

उत्तर की माटी देखो तो केसर है
दक्षिण की माटी में चंदन निखरी है।
पूर्व दिव्यता की थाली-सा दमक रहा
पश्चिम के अम्बर में कुंकुम बिखरी है॥
पागल बदली अमृत वर्षा करती है।
मेरी धरती है यह मेरी धरती है॥

जेठ तपस्वी सूरज-सा आगे आता
आषाढी बादल मनुहारें करता है।
सावन की रिमझिम में धरा नहाती है
भादौं तो मस्ती में झूला करता है॥
हरियाली मादक अँगडाई भरती है।
मेरी धरती है यह मेरी धरती है॥

चटक चाँदनी रातों में अमृत भरती
आश्विन वाली शरद पूर्णिमा मतवाली।
कार्तिक फुलझड़ियों से और पटाखों से
मना रहा है जगमग-जगमग दीवाली॥
दीपशिखाएँ झिलमिल-झिलमिल करती हैं।
मेरी धरती है यह मेरी धरती है॥

मिंगसर का है मजा गुलाबी ठंडक में
पोष रजाई में रंगरेली करता है।
कुंज-कुंज में मादक माघ विचरता है
गली-गली में फागुन नाचा करता है॥
झर-झर झर-झर रस की बूंदें झरती हैं।
मेरी धरती है यह मेरी धरती है॥

चैत सदा बासन्ती मस्ती में रहता
तितली औ फूलों की गुपचुप चलती है।
अक्षय तृतीया की बैशाखी सीख लिये
नव-वधुओं की नई डोलियाँ चलती हैं॥
तब मौसम भी सजती और सँवरती है।
मेरी धरती है यह मेरी धरती है॥

मैदानों की व्याकुल प्यास बुझाने को
पर्वत की छाती भी यहाँ पिघल जाती।
कुलबुल बीजों की आवाजें सुन करके
भीगी-भीगी धरती फसलें दे जाती॥
मंद-मंद वायु मादकता भरती है।
मेरी धरती है यह मेरी धरती है॥

इस धरती की रज को छूते ही जैसे
मन पवित्र हो जाता मैल छूट जाती।
मिसरी घुल जाती इंसानी कंठों में
भेदभाव की कड़ियाँ सभी टूट जाती॥
गंगा जैसे मन में उतरा करती है।
मेरी धरती है यह मेरी धरती है॥

मंत्र, आयतें, सबद और संदेश सभी
हाथ मिला कर जब खुल करके हँसते हैं।

प्रेम पगी पिछली शताब्दियाँ कहती हैं
यहाँ मुहब्बत करने वाले बसते हैं॥
मानवता की महिमा यहाँ निखरती है।
मेरी धरती है यह मेरी धरती है॥

घुँघरू की क्या कोई जात हुआ करती
गौत्र कौनसा होता है बाँसुरियों का?
झंकारें क्या किसी वर्ण में बँधती हैं
सम्प्रदाय कैसा गीतों की लड़ियों का?
मेलजोल की नावें मिलकर तरती हैं।
मेरी धरती है यह मेरी धरती है॥

*

कजरारी नदी

कजरारी एक नदी गगन में बहती जाती
थोड़ी पूँजी बड़ा छलावा
कोरा मायाजाल दिखावा
सावन के लोरों का मन होता है चंचल
जैसे अल्हड़ एक जवानी
राह भटक कर बहती जाती।
कजरारी एक नदी गगन में बहती जाती
श्यामल-सी एक नदी गगन में बहती जाती।

हल्की से हल्की से हल्की
बूँदें आती खोये-खोये
मन ही भीगा नहीं अगर तो
धरती को क्या खाक भिगोये
चंदन वन में रात रात भर रहकर जैसे
किंशुक कली अकेली गंधहीन रह जाती।
कजरारी एक नदी गगन में बहती जाती
श्यामल-सी एक नदी गगन में बहती जाती।

ढीठ और अड़ियल बालक-सी
कभी फुहारें
धरती पर आने की कर बैठें मनमानी
तो लगता है
सूखे सावन की मृत्यु पर
तर्पण देने थोड़ा-सा आता है पानी

एक कृपण की काया चाहे चली जाए पर
माया तो अक्षत रह जाती।
कजरारी एक नदी गगन में बहती जाती
श्यामल-सी एक नदी गगन में बहती जाती।

लम्बी दूरी के यायावर क्यों आते हो?
वृंदावन का झाँसा देकर
मरुस्थली क्यों फैलाते हो?
मोर-पपीहों का श्रम यहाँ अकारथ जाता
खुलता नही निराश
कृषक की आँखों में आशा का खाता
कोरी सूनी निपट गँवारु हैं ये आँखें
फिर भी तेरे छलियापन की
कथा अनकही ये कह जातीं।
कजरारी एक नदी गगन में बहती जाती
श्यामल-सी एक नदी गगन में बहती जाती।

काले,घने और बरसाती बादल चाहे
राह भटक कर भी आ जाएँ
तो जालिम मौसम की ये एजेंट हवाएँ
उनको बहका करके
ऊपर का ऊपर आगे ले जाएँ
जैसे छोटे स्टेशन पर बिना रुके ही
कोई एक्सप्रेस गाडी आगे बढ जाए
अपनी चतुराई पर ये बेदर्द हवाएँ
आँख दबा कर यहाँ ठिठोली करती जाती।
कजरारी एक नदी गगन मे बहती जाती
श्यामल-सी एक नदी गगन में बहती जाती।

धरती का गर्भाशय चाहे उपजाऊ हो
लेकिन बंजर रहने को लाचार बनी है

बाँझ कोख की पीड़ा को तुम क्या जानोगे
एक भयावह-सा सपना है
तुम तो काम चला लेते हो इन लोरों से
ठीक आजकल के छोरों से
जिनके हाथ नहीं कुछ आए
किंतु सुहाने सपनों को
लेने में क्यों पीछे रह जाएँ
इन सपनों में रूपवती-सी, भर मस्ती-सी
कोई चंचल-सी अभिनेत्री
अंकशायिनी तक बन जाती
निपट निराशा ही बचती है
जिस क्षण तनिक आँख खुल जाती।
कजरारी एक नदी गगन में बहती जाती
श्यामल-सी एक नदी गगन में बहती जाती।
*

* मरुस्थल की पीड़ा का यह एक भाव चित्र है। जब सावन सूखा चला जाता है। वर्षा के कजरारे बादल उमड़-उमड़ जाते हैं। लोर के लोर बिना बरसे चले जाते हैं। कजरारे बादल एक छलावा सिद्ध होते हैं। रेगिस्तान के निवासी आकाश में उमड़ने वाली ऐसी कजरारी नदी को देखते रहने के लिए अभिशप्त हैं।

मन को बाँट लिया

बाँट लिया धरती को जल को बाँट लिया
फिर भी टूटे नहीं, गगन को बाँट लिया
तड़क गए दर्पण से बिम्ब सभी बिखरे
टूट गए जब हमने मन को बाँट लिया

मन की अमराई की पूरनमासी में
जब चाँदी का कोष लुटाया जाता है।
झिलमिल-झिलमिल तारे साक्षी देते हैं
प्रेम-कथा को फिर दोहराया जाता है॥
यह यायावर चाँद अकेला निकल पड़े
रात-रात भर पूरा गगन घूम लेता।
कुदरत तो निर्वसन नींद में होती है
यह मनमौजी उसके अधर चूम लेता॥
रस में भीगी रात ठगी-सी रह जाती
किसी आत्म-मुग्धा-सी वह खो जाती है।
खूब चाँदनी पी करके छक हो जाती
रजनी खुद रजनीगंधा बन जाती है॥
झीने-झीने से बदली के कुन्तल को
चंदा जब धीरे-धीरे सहलाता है।
थोड़ा-सा सहवास सुखद हो जाता है
मस्ती का वह क्षण विराट हो जाता है॥
वृक्ष झूम जाते हैं मलयानिल पाकर
देने को झंकार तार कस जाते हैं।
दो दिल मिल जाते हैं धड़कन गुंथ जाती

मन में ताजमहल आकर बस जाते हैं॥
कैसे कोई वृक्ष सुवास हमें देगा?
कालचक्र ने उसे जड़ों से काट दिया।
तिड़क गए दर्पण से बिम्ब सभी बिखरे
टूट गए जब हमने मन को बाँट दिया॥

मीठे-मीठे पके मतीरे-सा यह मन
मिसरी का कुंजा है रस की धारा है।
मन कोयल का कंठ, कुंभ है अमृत का
सरगम के स्वर में बजता इकतारा है॥
झिलमिल मोती की थाली का दीपक है
प्रेम पंछियों की लम्बी परवाज यही।
अपने धुन का एक भटकता जोगी है
स्वयं अलख है करता है आवाज़ यही॥
मन की सुघड़ वादियों में गूँजा करती
बाँसुरियों की मधुर-मधुर तानें।
मन की बस्ती में मस्ती वाले रहते हैं
बहकी-बहकी पवन बनाती दीवाने॥
मन पवित्र हो तो कालिख धुल जाती है
दुरभिसंधियों वाला द्वन्द्व नहीं चलता।
मन कविता है ऐसा छंद निराला है
जिसमें कोई भी छल-छंद नहीं चलता॥
मन प्यासा है किन्तु सरोवर सूखा है
इसे पत्थरों से हमने ही पाट दिया।
तिड़क गए दर्पण से बिम्ब सभी बिखरे
टूट गए जब हमने मन को बाँट दिया॥

कोमल-कोमल-सा मन का नाजुक दर्पण
इसे संभालो कहीं टूट ना जाए यह।
यह संवेदित भावुक ऐसा प्रेमी है

इसे मनाओ कहीं रूठ ना जाए यह॥
मन तो डोरी है गाँठें पड़ जाती हैं
पतली-सी है त्वचा तुरत छिल जाती है।
एक दर्द की वंदिश है छिड़ जाएगी
तारों में यदि सही तान मिल जाती है॥
मन तो गंगाजल है क्यों मैला करते
कलुष नहीं फिर इसमें घुलने पाएगा।
काजल की कोठरिया में जो भी आए
कितना ही कर लो काला हो जाएगा॥
मन में जो युद्धों के शंख बजाते हैं
स्वयं महाभारत को न्यौत बुलाते हैं।
पगलों की बस्ती में रहने वाले तो
अपने हाथों अपनी मौत बुलाते हैं॥
मथुरा ने गोकुल का जीवन छीन लिया
रूठी है बाँसुरिया आज कन्हाई की।
मन का वृंदावन भी सूखा-सूखा है
कौन पढ़े सौंदर्य-कथा तन्हाई की॥

भीतर से बिखरा-बिखरा इंसान रहे
संवेदन से हमने उसे सपाट किया।
तिड़क गए दर्पण से बिम्ब सभी बिखरे
टूट गए जब हमने मन को बाँट दिया॥

*

अहसास

भोर की वेला में
जब फूल ने अपनी सुगंध फैलाई
तो जैसे महक उठा सारा उपवन
बौरा गई हवा।

भोर की वेला में
जब कली ने मुस्कान बिखेरी
तो जैसे चमक उठा प्रकृति का आनन
खिल उठी आत्मा धरती की
रंध्र-रंध्र में भर गया उजारा।

भोर की वेला में
जब चहक उठा पंछी अलबेला
तो जैसे तरंगित हो गया
सारा वातावरण
मधुमय हो गए पत्ते, शाखाएँ, वृक्ष।

मैंने सोचा
क्यों न बटोर लूं
यह गंध, मुस्कान, माधुर्य
बना लूँ मात्र अपना
सदा के लिए।
सहेज कर ले आया अपने साथ
रख दिया

हाथी दाँत की फूलदानी में
फूल और कली को,
बंद कर दिया
पक्षी को पिंजरे में।
अगले दिन देखा
न वहाँ गंध थी,
न मुस्कान, न मिठास
बच रहा था एक कड़ुआ अहसास
एक कड़ुआ अहसास।

•